श्रीसीतारामचन्द्र रटाटे स्मृति लेखमाला-२

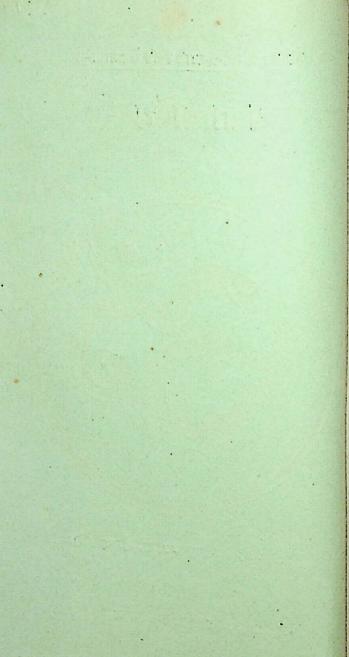
वेदतत्त्वविचार

संस्कृत-हिन्दी लेखद्रय विभूषित



श्री पं0 नारायणशासी रटाटे

श्रीसीतारामचन्द्र रटाटे स्मृतिभवन, वाराणसी



श्रीसीतारामचन्द्र रटाटे स्मृति लेखमाला प्राप्त क

वेद तत्त्व विचार

संस्कृत-हिन्दी लेखड्ड य विभृषित

लेखक

श्री पं0 नारायण शास्त्री रहाटे अथर्ववेदमार्तण्ड, वेदपण्डित, पुराणचर्चा प्रवीण अथर्ववेदाध्यापक:-निगमागम दरभङ्गा विद्यालय, वाराणसी

श्रीसीतारामचन्द्र रटाटे स्मृतिभवन, वाराणसी १९८५ प्रकाशक: श्रीसीतारामचन्द्र रटाटे स्पृतिभवन, वाराणसी

मुद्रक : ज्योतिष प्रकाश प्रेस

संस्करण : प्रथम, वि० सं० २०४२

मूल्य : ५-००

© श्रीसीतारामचन्द्र रटाटे स्मृतिभवन के॰ २२/४८, दुर्गाघाट वाराणसी-२२१००१ (भारत)

प्राप्तिस्थान श्रीसीतारामबन्द्र रटाटे स्मृति भवन के॰ २२/४८, दुर्गाघाट वाराणसी-२२१००१ (भारत) श्री स्व॰ आहितामि वें॰ शा॰ सं॰ पं॰ रामचन्द्र शास्त्री रटाटे चतुर्वेदी, वैदिकचक्रवर्ती, सम्मानित प्राध्यापक वा॰ सं॰ वि॰ वि॰ वाराणसी के स्मृतिदिवस के उपलक्ष्य में ……



आविर्भाव ई० सन् १८७४]

[तिरोभाव ई० सन् १९६६

विकास का विकास कर के जिल्ला के निर्माण के बार के जान कि of the survey of the said of Your Port of the

🕸 ग्रन्थ-समपंणम् 😤

निगमागमज्ञानपारावारपारीणानां धर्मधराधारणधौरेयाणां कर्मयोगविचक्षणानां कर्त्तव्यनिष्ठानां मानवधर्मतन्त्वज्ञातॄणां द्यादाक्षिण्यादिगुणगणयुक्तानां सर्वभूतसमभावसहद्यानां राजिषपद्वीविभूषितानां
श्रीमतां माननीयमहामहिमराज्यपालचन्द्रेश्वरप्रसादनारायणसिंहमहोद्यानां करकमल्योः
सादरं समर्पयामि-

नारायणशासी रटाटे

Phone { 54160 ffo 34170 Res.

काशी विद्यापीठ, बाराणसी KASHI VIDYAPITH, Varanasi-221002

दिनांक २२-९-८४

श्री॰ डॉ॰ डी॰ एन॰ चतुर्वेदी कुरुपति

Prof. Dr. D. N. Chaturvedi Vico-Chancelar

पूज्य पं॰ नारायण शास्त्री रटाटे जी,

आपने पवित्रतम रचना हेतु अपनी पवित्र लेखनी से वेदतत्व विचार प्रारम्भ किया है। यह एक स्तुत्य एवं प्रशंसनीय कार्य है। आप इस राष्ट्र को ही नहीं अपितु विश्व को इन सब भारतीय अमृल्य रचनाओं से आज के युग के समस्त नागरिकों को अवगत कराने का प्रयास करें क्योंकि आज यह कार्य अत्यन्त आवश्यक है। वेदों और उपनिषदों की अमृत वाणी १८ पुराणों द्वारा यदि सारे विश्व को प्राप्त हो जाती तो विश्व शान्ति, विश्व बन्धुत्व एवं मानवता के सभी मूल्यों की रक्षा हो सकेगी। इस पुनीत कार्य के लिए मैं आपको साधुवाद देता हूँ और राष्ट्र के समस्त विद्वानों, मनीषियों सत्ताधारियों और सम्पत्तिधारियों से निवेदन करता हूँ कि उनके द्वारा श्री रटाटे जी को सभी प्रकार के साधनों से सम्पन्न किया जाना चाहिए।

मैं आपकी विद्वत्ता से बहुत प्रभावित हूँ और मंगलकामना की पुष्पांजलि अर्पित कर रहा हूँ।

आपका,

Bhomp

५० नारायण ग्रास्ती रटाटे 'अथर्वेवेदमार्तण्ड' अथर्वेवेदाध्यापक, दरमंगा विद्यालय, वाराणसा

(डी॰ एन॰ चतुर्वेदी)

श्री राज्यपाल



राज भवन छखनऊ फरवरी ५, १९८५

उत्तर प्रदेश सन्देश

वेद का अर्थ है ज्ञान। हमारे वेदों और अन्य वैदिक साहित्य में ज्ञान का अथाह भण्डार सुरक्षित है। मानव मात्र की उन्नति एवं उसके कर्याण के लिये इस ज्ञान के ज्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार की आवश्यकता है। विशेषतः आज के सन्दर्भ में जब समाज में हर ओर बिखराव दृष्टिगोचर हो रहा है उस बिखराव को समेटने में वैदिक ज्ञान अत्यधिक सहायक सिद्ध हो सकता है।

पण्डित नारायण शास्त्री रटाटे ने हिन्दी और संस्कृत में "वेद तत्व विचार" की रचना करके हिन्दी और संस्कृत भाषा-भाषी छोगों में वैदिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार की दिशा में जो पहल की है उसके ' छिये मैं उन्हें बहुत-बहुत साधुवाद देता हूँ।

प्रकाशन की सफलता के लिये मेरी शुभ-कामनाएँ।

stayonas

॥ च० प्र० ना० सिंह ॥

The Party

THE REAL PROPERTY.

अ उपकमः अ

आज महान हर्ष का विषय है कि सोतारामवाद्व-स्मृति-लेख सालां का द्वितीय पुष्प' वेद तन्त्र विचार प्रकाशित हो रहा है। मात्र एक महान आश्चर्य भी है कि अठारहवें वर्ष में द्वितीय पुष्प प्राप्त हो रहा है, इसका कारण है—'स्वयंदासास्तपिस्वनः'। अपने कर्तव्य का पाछन अपने को ही करना है। आज भारतीय संस्कृति का स्तर गिरता जा रहा है जिस संस्कृति का आधार है 'ज्ञान'। हम ज्ञानहीन होने से नैतिक पतन की तरफ बढ़ रहे हैं, मानव धर्म को भूल रहे हैं, ज्ञान के कारण ही मानव संसार में श्रेष्ठ है, देवता भी ज्ञान की प्राप्ति के लिए मानव देह की इच्छा करते हैं, जिसके द्वारा मोश्च प्राप्त होता है। परन्तु, आज मानव ज्ञान-होनता के कारण पश्च से भी नीचे गिर रहा है—

'निद्रादिमैथुनाहाराः सर्वेषां प्राणिनां समाः । ज्ञानवान् मानवः प्रोक्तो ज्ञानहीनः पशुः स्मृतः' ॥ १६॥ (सारोद्धार अ. १६ प्रेतकल्प)

आहार, निद्रा, भय, मैथुन ये सभी प्राणियों में एक समान है, परन्तु ज्ञान के कारण ही मनुष्य श्रेष्ठ है। ज्ञान-हीन को ही पशु कहते हैं। आज इन्हीं चार बातों के वशीभूत होकर महान मानव जीवन का नाश कर कर्त्तव्यकर्मच्युत हो रहा है। आज मानव रूप ख़ुश, प्रकृति के विकास रूप झंझावात से आघातित हो रहा है, इससे ख़ुरक्षित होने का एक ही उपाय है जैसे-'आँधी आवे बैठ गमाबे'।

मानव बृक्ष को घराशायी होने से बचाने में सुरक्षा का महान साधन है—आचार-विचार-आहार तथा विहार। सदाचार से सद् विचारों की प्राप्ति होती है, उससे सद् व्यवहार बनता है। सात्विक आहार (खान-पान) से काम-भोगादि पर नियंत्रण होता है, जिससे अच्छे संस्कार होते हैं। योग्य संस्कारों से संस्कृत हो मानव श्रेष्ठ आयेसंस्कृति का निर्माण करने में सफल होता है और एक महान मार्गदर्शक बनता है—

'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।' 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' ।

इसका मूळ है आचार— 'सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते। आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥१३०॥ (श्री. वि. स. ना. स्तो.)

सर्वशास्त्रों में आचार ही प्रथम माना जाता है। आचार से ही धर्म की उत्पत्ति होती है और धर्म का स्वामी भगवान अच्युत है। "वेदतस्यविचार" मानव के लिए 'ज्ञान' प्रदायक होकर सुख, शान्ति, तथा कल्याण का महान साधन सिद्ध होता है।

अन्त में प्रन्थ के प्रेस कापियाँ आदि बना कर मुद्रणोपयोगी बनाने वाले डॉ॰ ज॰ गं॰ रटाटे एम॰ ए॰ साहित्याचार्य एवं गोपाल रटाटे अथवंवेद शास्त्री को हार्दिक आशीर्वाद प्रदान करता हूँ तथा इसके मुद्रक ज्योतिष प्रकाश प्रेस के संचालकों को धन्यवाद देता हूँ।

पृं नारायण श्वास्त्री रटाटे चैत्र शुक्क ५ मी संवत् २०४२ के॰ २२।४८, दुर्गाघाट बाराणसी

संस्कृतविषयानुक्रमणिका

विषय:	पृष्ठांव
(१) वेदस्वरूपम्	8
(२) वैदिकस्वरूपम्	3
(३) वैदिकधर्मः	3
(४) बैदिकराजनीतिः	4
(५) सामाजिकः समभावः व्यवहारः एकता च	v
(६) शिक्षा दीक्षा च	6
(७) उपसंहारः	9

हिन्दीविषयानुक्रमणिका

(१) वेद क्या है ? १ (२) वैदिक कौन है ? १ (३) वैदिक धर्म क्या है ? १ (४) वैदिक राजनीति १ (५) सामाजिक समभाव व्यवहार वा एकता १०	ांक
(२) वैदिक कौन है ? १ (३) वैदिक धर्म क्या है ? १ (४) वैदिक राजनीति १ (५) सामाजिक समभाव व्यवहार वा एकता १	}
(४) वैदिक राजनीति १५ (५) सामाजिक समभाव व्यवहार वा एकता १५	1
(४) वैदिक राजनीति १५ (५) सामाजिक समभाव व्यवहार वा एकता १५	4
(५) सामाजिक समभाव व्यवहार वा एकता १०	•
(६) शिक्षा-दीक्षा १९	
(७) उपसंहार	,

वेदतत्त्व विचारः

यस्य निश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्। निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेश्वरम्॥

वेदा एव अखिलस्य ब्रह्माण्डस्य आधारः। अग्माकं धर्मस्य, राजनीतेः, सामाजिकव्यवहारस्य, शिक्षा-दीक्षादीनामपि आधारः वेदा एव सन्ति । वेदतत्त्वस्य विज्ञानाय अस्माभिः त्रिकोणात्मकरूपेण विचारः करणीयः। वेदाः, वैदिकाः जनाः ॥ वैदिकधर्मश्च इतीदं त्रिकोणात्मकं रूपम्।

(१) वेदस्वरूपम्-

अनन्ता वै वेदाः ॥ तै० न्ना० ३।१७।११॥ अनेन न्नाह्मणवचनेन इदं स्पष्टं भवति यत् वेदाः अनन्ताः । वेदानां वेदत्वमिष पिप्पलाद्श्रुत्या प्रमाणितं भवति । तद् यथा—"वेदा ह्येवैनं वेदयन्ति तस्मादाहुर्वेदा इति" ॥ पिप्पलादश्रुतिः ॥ इन्द्रियैः लौकिकेन शरीरेण वा
ये स्वर्गाद्यो लोकाः न सुलभाः ते वेदोक्तेन उपायेन सारत्येन लन्धुं
शक्यन्ते । यच्च न्नह्यतत्त्वं अन्यैः लौकिकैः उपायैः मनसा वाचा च
न सुलभं तद्षि वेदोक्तेनैव ज्ञानेन प्रत्यक्षविषयं भवति । वेदस्वरूपविषये आपस्तम्बपरिभाषा कथयति—"मन्त्रन्नाह्मणयोर्वेदनामधेयम्"
॥ आपस्तम्बपरिभाषा १।३३ ॥ न्यायस्त्रं वेदस्य महिमानम् एवं
वर्णयति "य एव मन्त्रन्नाह्मणस्य द्रष्टारः प्रवक्तारश्च ते खिन्वतिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति" ॥ न्या० सू० ४।१६२ ॥ मन्त्रभागः
नाह्मणभागश्च इति द्वयमि अनादिकालादेव सर्वौः प्रमाणं मन्यते ।
"वेद् शास्त्र द्वयं चैव प्रमाणं तत्सनातनम्" ॥ म भा० १२।३०५।०॥
वेदा एव न्नह्मणः शब्दात्मकं रूपम्। अत एव श्रीमद्भागवते काशीरहस्ये च उक्तम्—शब्दन्नह्म परंन्रह्म ममोभे शाश्वती तन् । ॥ श्री०

भा १ ६।१६।५१ ॥ "शब्द ब्रह्म ब्रह्ममूलं वदन्तः" ॥ तत्रत्या टीका-शब्दत्रह्म - वेदः प्रणवो वा त्रह्ममूळं = त्रह्मप्रापकः ॥ काशीरहस्य-३।४४ ॥ वयं भारतीयाः वेदान् एव सर्वेष्विप प्रमाणेषु प्रधानतम् मन्यामहे । यत् किमपि वेदैः उक्तं तत् सर्वम् अस्माक कृते प्रमाण-रूपम्। यत्र कुत्राऽपि अन्येषु प्रन्थेषु प्रत्यक्षं वेद्विरुद्धं वचनम् उपलभ्यते तत्र वेद्विरुद्धत्वात् तद् वचनम् अप्रमाणं भवति । वेदानां शाखा-भेद्विषये इदं महाभाष्यवचनं नित्यानिच्छन्दांसीति यद्यप्यथीं नित्यो यात्वसौ वर्णानुपूर्वी साऽनित्या तद्भेदाच्चैतद्भवति काठकं, कालापकं मौदकं पैप्पलादकमिति । महाभाष्यम् । अनेन स्पष्टं भवति यत् तासु-तासु, काठक, कालापकादिशाखासु उपलभ्यमाना वर्णानुपूर्वी यद्यपि भिन्ना तथापि तद्भतः अर्थः सर्वेत्र अभिन्नः नित्यश्च । अतप्व शाखारूपः विकल्पः यत्र तत्र द्रीहर्यते । अस्य इद्मेव कारणं यत् मन्त्रद्रष्टारः पुरातनाः ऋषयः यं यं मन्त्रं याद्दग्रूषं दृष्टवन्तः तं तं मन्त्रं ताहग्रूपेणव स्वशिष्यान् पाठितवन्तः। तमेव च पाठम् अतु-सत्य तस्यां शास्तायां ते ते मन्त्रा इदानीमिप तेनैव रूपेण वेदविदुषां मुखात् निर्गच्छन्ति । यथा-काण्यशाखायां विजुगुप्सते ॥ ईशावास्यः ४०। इति शब्दः मन्त्रे श्र्यते, किन्तु माध्यन्दिनशासायां विचिकिन त्सिति ॥ ईशावास्य० ४०१६ ॥ इति शब्दः मन्त्रे श्रूयते । उमयोर्षि यतयोः शब्दयोः आकारे यद्यपि भेदः अस्ति, तथापि अनयोः उभयो-रिप अर्थः एकएव । अतएव भेदः अनित्यः अभेदः नित्यः ।

सर्वास्ताहि चतुष्पादाः सर्वाश्चकार्थवाचकाः। पाठान्तरे पृथासूता वेदशाखा यथा तथा। प्राजापत्याश्रुतिनित्या तद्विकल्पास्त्विमे स्मृताः ॥

॥ बा० पु० ६१।५९।७५॥

एवं तत्च्छाखारूपेण विद्यमानाः चत्वारोऽपिवेदाः अपौरुषेयाः अनाद्यश्च । अस्मिन् विषये भट्टपादैः स्वीये तन्त्रवार्तिकप्रन्थे वेदा नाम् अपौरुषेयत्वं साधियतुम् अनेकाः युक्तयः उपस्थापिताः सन्ति।

आदि वाक्यमि श्रुत्वा वेदानां पौरुषेयता। न शक्याऽध्यव-सातुं हि मनागि सचेतनैः। तेन वेदस्वतन्त्रत्वं रूपादेवावगम्यते। महेश्वरेण ब्रह्मणः हृद्ये वेद्विषयिणी प्रेरणा उत्पादिता तद्नुरूपं ब्रह्मणः चतुभ्यः मुखेभ्यः प्रथमा वेद्वाणी निरगात् सा वेद्रूपा वाक् नित्या अपौरुषेया अनादिश्च "अतएव नित्यत्वम्।॥ उन्मी० १।१३।२९॥ एवं सुस्पष्टं भवति यत् पुरुषकृतप्रयत्नं ब्रह्मकृतप्रयत्नं च विनैव वेदाः प्रतिकर्णं ब्रह्मणः सुखात् उपस्थिताः भवन्ति, अतएव नित्याः अनाद्यः अपौरुषेयाश्च।

(२) वैदिकस्वरूपम्-

यः जनः वेद्प्रामाण्यं मन्यते सः वैदिकः यश्च वेद्म् अधीते तद्र्यं जानीते वा सोऽपि वैदिकः । इदं वेदाध्ययनमपि गुरुपरम्परया छत्र्धं सत् सिद्धिं प्रयच्छति, नान्यथा । यदि कश्चित् जनः गुरुपरम्परां विद्याय स्वतन्त्ररूपेण स्वबुद्धिचातुर्येण पाठशक्त्या वा वेद्म् अधीते तिहं सः तेन वेदाध्ययनेन वेद्तत्त्व ज्ञातुं योगसिद्धिं वा प्राप्तम् नाहति । अतएव ऋग्वेदे उक्तम्—

यस्तिस्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति । यदींश्वणोत्यलकं श्वणोति निह प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥ ऋ० वे० १०।७१।६

यो मानवः वेद्रूपं मित्रं परित्यजित सः इह्छोके परछोके वा साफल्यं न भजते । अतः गुरुपरम्परया वेदाण्ययनं कुर्वन् एव द्विजः वास्तविकः वैद्कः । वेद्तत्त्वस्य प्राप्तये योगसिद्धीनां प्राप्तये वा योगशास्त्रे अनेकानि साधनानि निरूपितानि सन्ति । तेषु साधनेषु वैदिकधर्मस्य आचरणं प्रधानं साधनं वर्तते ।

(३) वैदिकधर्मः-

अथ कोऽयं वैदिकधर्मः इति जिज्ञासायां इद्गुच्यते । धारणार्थकात् धृत्यातोः मनिप् प्रत्यये कृते "धर्म" शब्दः निष्पन्नो भवति । धर्म-शब्दस्य "धारणात् धर्ममित्याहुः" धारयतीति धर्मः", "वेदप्रणि- हितो धर्मः "इत्याद्याः अनेकाः परिभाषाः तैस्तैराचार्यैः कृताः सन्ति । अतएव वेदेन कर्त्तव्यतया निरूपितानि कर्माणि धर्मकोटौ आयान्ति । एवमेव वेदानुसारिस्मृतिप्रन्थेषु पुराणप्रन्थेषु च यानि कर्माणि कर्त्तव्यतया निर्दिष्टानि सन्ति, तान्यपि सर्वाणि धर्मरूपेण स्वीक्रियन्ते । यानि चकर्माणि तद्विरोधीनि तानि सर्वाणि धर्माभासरूपाणि अधर्मकोटौ प्रविश्तन्ति । अतएव उक्तं श्रीमद्भागवते- "वेदप्रणिहितो धर्मः अधर्मः स्तद्विपर्ययः" अन्यत्राऽपि-श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते । तत्र श्रीतं प्रमाणं स्यात्तयोद्वैधे स्मृतिवरा । व्यासस्मृति १।४॥ विरोधेत्वनपेक्षंस्याद्सतिद्यनुमानम्" । ॥ पूर्वमीमांसा १।३।३॥ कृतुहृद्यन्तौ-प्रत्यक्षश्रुतिवरोधे सति अनपेक्षं श्रुतिवाक्यमेव प्रमाणं स्यात्रतुस्मृतिवाक्यम् । "धर्मस्य शब्दमूद्यत्वादशब्दमनपेक्ष्यं स्यात्" । ॥ पूर्वमीभांसा १।३।१॥ वृद्धस्यत्वाक्यम् । "धर्मस्य शब्दमूद्यत्वादशब्दमनपेक्ष्यं स्यात्" । ॥ पूर्वमीभांसा १।३।१॥ वृद्धस्यित्वाक्यम् । "धर्मस्य शब्दमूद्यत्वादशब्दमनपेक्ष्यं स्यात्" । ॥ पूर्वमीभांसा १।३।१॥ वृद्धस्यत्वावस्यम् । "धर्मस्य शब्दमूद्यत्वादशब्दमनपेक्ष्यं स्यात्" । ॥ पूर्वस्रित्वाक्यम् । "धर्मस्य शब्दमूद्यत्वादशब्दमनपेक्षयं स्यात्" । ॥ पूर्वमीभांसा १।३।१॥ वृद्धस्यत्वावस्यमेव स्थात् ।

" न किर्देवा मिनी मिस न किरायोपयामिस मन्त्रश्रुत्यं चरामिस पक्षेभिरिप कक्षेमि रजामि सरमामहे ॥ ऋ० वे० १०।१३४।७॥ हे देवाः वयं भवद्विषये न कामपि त्रुटिं कुमेः। कस्मिन्नपि कमैणि विलम्बम् अश्रद्धां वा न कुर्मः, मन्त्रानुसारं त्राह्मणप्रन्थानुसारं च आचरणं कुर्मः, हस्तयोः एकत्रीकृतां यज्ञसामभीं गृहीत्वा स्वर्गसोपान्रूपं यज्ञ-कर्म सम्पादयामः। ऐतरेयारण्यके उक्तम्-"एष पन्था एतत्कर्म-तद्बह्मतत्सत्यम्। तस्मान्न प्रमाद्येतन्नातीयात्। न ह्यन्त्यायन्पूर्वे येऽत्यायस्ते परावमूबुः।"॥ ए० आः २।१।१॥ अयं वैदिकः अनार्दि-मार्ग एव इह्लोके परलोके च कल्याणकारी वर्तते । अयमेव कर्ममार्गः, उपासनामार्गः, ज्ञानमार्गश्च । चतुर्षु अपि ऋग्वेदयजुर्वेदसामवेदाऽथर्व-वेदेषु क्रमेण ज्ञानविषये कर्मविषये, उपासनाविषये विज्ञानविषये च वर्णनम् अस्ति । अतएव अस्मिन् परम्परागते वैदिकधर्माभिधाने वैदिकमार्गे शुष्कस्तर्कः प्रमादो वा न करणीयः। अस्य मार्गस्य कदापि परित्यागोऽपि न करणीयः । पूर्वैः गोत्राप्रवर्तकैः सृग्वङ्गिरोवसिष्ठ कश्यपनामकैः ऋषिभिः तत्सन्तानैः कविबृहस्पतिद्ध्यङ्वामदेव प्रशृतिभिः ऋषिभिश्च अयं वैदिकोमार्गः कदापि न परित्यक्तः। अतः

तत्सन्तानैः अस्मामिरिष सः मार्गः कदापि न परित्याज्यः। अस्य वैदिकमार्गस्य आचरण एव अस्माकं सर्गविधं कल्याणम्। इतिहासः साक्षी विद्यते यत् यैर्येजेनैः वैदिकमर्यादायाः उल्लंघनं कृतं त्यागी वा कृतः ते सर्वे अनार्याः सन्तः हीनाः सन्तः महत् कष्टम् अनुभूय परामत्रं प्राप्नुविन्तस्म । वैदिकधर्मस्य अयमेव सारांशः यत् कदाऽपि अस्य वैदिकधर्मस्य परित्यागः न करणीयः सतां सेवा करणीया, कामक्रोधादयः शत्रवः जेयाः, अन्यस्य गुणानां दोषाणां वा चर्चा न करणीयाः, सत्यभाषणं विधेयं, हिंसा परित्याज्या, अग्नेः, सूर्यस्य, वरुणस्य, शिवस्य, वासुदेवस्य, दुर्गायाः, गणपतेश्च सेवास्मरणादिकं करणीयं नश्वरे देहे ममता परित्याज्या, संसारविषयिणी आसिन्तः हेया, सर्ज्या तदेव कर्म आचरणीयं यत् वेदैः उपितृष्टं यद्वा अविगीतैः शिष्टंः आचरितप्। यदि कश्चन मानवः स्वीयां वास्तविकीम् उन्नतिं कामयते तिर्दं तेन अस्य गैदिकधर्मापरपर्यायस्य गैदिकमार्गस्य अनुसर्णम् अवश्ययेव करणीयम्। अतएव उक्तं—"यद्वैकिंचनमनुरवदत्तद्-भेषज्ञम्" तै० शा० राशिश्वर।

(४) वैदिकराजनीति:--

वैदिक राजनीतेः स्वरूपमथवंवेदे एव वर्णितमस्ति । सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुंहितरो संविद्।ने । येना संगच्छा उपमा स शिक्षाच्चारु वदानि पितरः संगतेषु ॥

विद्य ते समे नाम निष्टा नाम वा असि।
ये ते के च समासदस्ते में सन्तु स वाचसः॥
पृषामद्दं समासीनानां वर्चो विज्ञानं मा ददे।
अस्याः सर्वस्याः संसदो मामिन्द्र भिगनं कृणु॥
यद्वो मेनः परागतं यद्वद्वमिद्द वेदवा।
तद्व आ वर्त्यामसि मिष्य वो रमतां मनः॥

समा विदुषां समाजः

हे सभे ते तब नाम नामघेय विद्या जानीमः । "विदोल्टो वा" शाश्र शा इति मसो मादेशः । तन्नाम दर्शयति—हे सभे नाम नान्नेति यावत् । निरष्टा रिषिणात्कान्तेन नव् समासः अहिसिता परैरनिभभाव्या । एतन्नामिका असि वै भवसि खलु । एकस्य वचनम् अन्येराद्रियते तिरिस्क्रियतेऽपि । बहवः संभूय यद्येकं वाक्यं वदेयु-स्तिद्ध न परैरितिल्ड्च्यम् । अतः अनितिल्ड्च्यवाक्यत्वाद् निर्ष्टेति नाम सभाया युज्यते ।

अस्मिन् सुक्ते सभा कीहशी भवेत् इति सभास्वरूपम् ऋषिणा निर्दिष्टम् । तन्मतानुसारं सभा द्विविधा-प्रामसभा राष्ट्रसभा च अनयैव रीत्या नगरानुसारं नगरसमा प्रान्तानुसारं राष्ट्रसमा भवेत्। पताः सर्वाः सभाः तस्य-तस्य राष्ट्रभागस्य कार्यं सम्पाद्येयुः। राजा । शासकः । प्रजानां पालनं तथैव कुर्यात् यथा करचन पिता स्वपुत्रान् पालयति । पूर्वोक्तं समाद्वयम् एकमतं सत् राष्ट्रस्य कार्यं कुर्यात्। सभासद्ः सत्यवादी भवेत्, योग्यां सम्मतिं दद्यात्, राजा अपि तेषु सभासत्सु विश्वासं कुर्यात् । अथवीवेदे सभायाः अपरः पर्यायः नरिष्टा अस्ति। - "नरिष्टा नाम वै असि" अनेन नाम्ना इदं स्पष्टं भवति यत् सा सभा नराणाम् इष्टा तथा तत्रत्याः नेतारः अपि नराणाम्। जनतायाः। इष्टाः स्युः। सभा प्रजायाः राष्ट्रस्य वा नाशाय न भवेत्। न-रिष्टा। अपितु रक्षणाय कल्याणाय च भवेत्। अस्य पूर्वीनिर्दिष्टस्य वेदवाक्यस्य अयमपि अर्थः यत् यः राजा जनमतम् अनुसृत्य कार्यं करोति सः सदैव सुरक्षितो भवति । पूर्वोक्ते राजसभासूक्ते वैद्क-शासनपद्धतेः सिद्धान्तः वर्णितः अस्ति । अस्य सूक्तस्य अयमेव तात्पर्यार्थः यत् वैदिकपद्धत्या वैदिकराजनीतेः वैदिक्धर्मस्य च अनुसर्णेन च राष्ट्रस्य कल्याणं भवति "चत्वारो वेद्धमङ्जाः पर्वत् जैविद्यंमेव वा। सा ब्रूते यं स धर्मः स्यादेकोवाध्यात्मवित्तमः। ॥ या० स्मृ० १।९ ॥ "यद् आर्याः प्रशंसन्ति स धर्मः" ।

।। आप० घ० शर्०।७॥

(५) सामाजिकः समभावः व्यवहारः एकता च-

समाजे केन व्यवहारेण एकतायाः समग्रे राष्ट्रे अखण्डतायाः च स्था भवितुमहिति इत्यस्मिन् विषये अथवीवेदे उक्तं—

संजानीध्वं सं पृच्यध्वं सं वो मनांसि जानतास्। देवाभागं यथापूर्वे संजानाना उपासते॥

॥ अ० वे० का० ६।७।६४॥

हे साम्मनस्य कामा जनाः यूयं संजानीध्नं समानज्ञानयुक्ता भवत । ज्ञानस्य स्निन्यवहारमूळत्वात् तद्विगानाभावः, प्रथमं प्रार्थयते। ज्ञा अववोधने "संप्रतिभ्यामनाध्याने" ॥ पाः ११३।४६ ॥ इति आत्मनेपदम् । "ज्ञा जनोर्जा" ॥ पाः ७१३।७९ ॥ इति जा आदेशः एवम् समानज्ञानाः सन्तस्ततः सं पृच्यध्वां संपृक्ताः संसृष्टकार्या भवत । पृचीसम्पर्के । सामानज्ञानत्विसिद्धये तत्करणस्यापि एकविषयतां प्रार्थे-यते । वः युद्माकम् मनांसि ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तानि अन्तःकरणानि संजानताम् । समानम् एकविधम् अर्थं जानन्तु । परस्पर विरुद्धज्ञान-जनकानि मा भूवित्रत्यर्थः ।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम्। समानेन वो हिवषाजुहोमि समानं चेतो अभिसंविशध्वम्॥२॥ सन्त्रः गुप्तभाषणं, कार्याकार्यपर्याछोचनात्मकम् तद्पि समानः एकह्पो भवतु । मन्त्रिगुप्तभाषणे । अस्माद् भावे घन्प्रित्यादिर्नित्यम्'॥ पात्रभवतु । इति आदिरुदात्तः । तथा समितिः संगतिः कार्येषु भवृत्तिः सापि समानी एकह्पाभवतु ।

समानी व आकृतिः समाना हृद्यानि वः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासितः॥३॥

हे साम्मनस्य कामाः वःयुष्माकम् आकृतिः संकल्पः समानी एकस्पा मवतु समानीमय । ३ । अस्य मन्त्रितार्थः-सर्वैः सह समान स्थानम् आश्रयणीयं, समानतया परस्परं सम्बन्धः स्थापनीयः, अस्माकं मनः

२ वे० वि०

समानतया युक्तं भवेत्, अस्माकं विचाराः समाना भवेयुः, सर्गेषां कृते सभा समानास्यात्।, सर्गेषां व्रतं समानं भवेत्, सर्गेषां चित्तं समानं भवेत्, सर्गेषां चित्तं समानं भवेत्, सर्गे एकमताः स्युः, सर्गे समानरूपेण प्रत्येकं कार्ये भागं गृह्वीयुः, सर्गेषां संकल्पः समानः भवेत्, सर्गेषाम् अन्नस्य, जलस्य च भागः समानः भवेत्, सर्गेऽपि समाने सम्बन्वेयुक्ताः सन्तः समानरूपेण ईश्वरस्य उपासनां कुर्युः, यथा चक्रस्य अराणि नाभौ संयुक्तानि भवन्ति तथैव सर्गे समाजे परस्परं संयुक्ताः भवेयुः, परस्परं सहयोगं च कुर्युः।

समानी प्रपा सहवोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सहवो युनजिम ।

॥ अ० ३।६।३।६॥

हे साम्मनस्य कामाः वः युष्माकम् समानी एका प्रपा पानीय-शाला भवतु । अन्नभागश्च सह एव भवतु । परस्परानुरागवेशेन एक-जावस्थितम् अन्नपानादिकं युष्माभिरुपमुज्यताम् इत्यथः । तद्रथम् अहं वः युष्मान् समाने योक्त्रे एकस्मिन् वन्धने स्नेहपाशे सहयुनिष्मसह वष्नामि । अपि च सम्यद्धः सङ्गताः एकफलाधिनो भूत्वा समानज्ञानाः सन्तः अप्नि सपर्यत । सपर पूजायाम् ।

(६) शिक्षा दीक्षा च-

कृष्णयजुर्वेदस्य तैत्तिरीयशाखायां शिक्षावल्यां गुरुणा स्नातकाय उपदेशः दीयते।

ॐ शिक्षां व्याख्यास्यामः । वेदमन्च्याचार्यो ऽन्तेवासिनमनु-शास्ति । सत्यं वद् । धर्मचर । स्वाध्यायान्माप्रमदः । आचार्यायप्रिय-धनमाहृत्य प्रजा तन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्नप्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यं । कुशलान्न प्रमदितव्यं । भूत्ये न प्रमदितव्यं । स्वाध्याय-प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यं । देविषकार्याभ्यां न प्रमदितव्यं । माद-देवो भव । पितृदेवोभव । आचार्यदेवोभव । अतिथिदेवोभव । यान्य नवद्यानि कर्माणि । तानि सेवितव्यानि । नो इत्राणि । यान्यस्मार्क इचरितानि । तानित्वयोपास्यानि । नो इत्राणि येकेचारमच्छेया ,

सो त्राह्मणाः । तेषां त्वयासनेनप्रश्वसितव्यं। श्रद्धयादेयं। अश्रद्धयाऽ देयं। श्रियादेयं। हियादेयं। भियादेयं। संविदादेयं। अथयदितेकर्म-विचिकित्सावा वृत्तविचिकित्सावास्यात्।ये तत्र त्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः । आॡक्षाधर्मकामाः स्युः । यथा ते तत्र वर्तेरन् । तथा तत्र वर्तेथाः । अथाभ्याख्यातेषु। ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः । युक्ताआ-युक्ताः । अॡक्षाधर्मकामास्युः । यथा ते तेषु वर्तेरन् । तथातेषुवर्तेथाः । एषआदेशः। एषउपदेशः। एषावेदोपनिषत्। एतद्तुशासनं। एवमुपा-सितव्यं। एवमुचैतदुपास्यं। इतिशिवोपनिषत्। गुरुः स्वीयं शिष्यं सर्वाश्रेष्ठं कमीचरणं कर्तुं योग्यं सम्पाद्यितुं च उपदिशति। यत् त्वं सदा सत्यं वद, धर्मस्याचरणं क्रुरु, सर्वादा अध्ययने सावधानो भव, सत्ये धर्मे देदशास्त्रयोः प्रवचने देविपतृकार्ये च प्रमादं मा कुरू, मातापित्रोर्गुरोश्च सेवां कुरु, अतिथीनां सेवां कुरु, अस्माकमपि यानि निन्दनीयानि कर्माणि तेषामनुकरणं मा कुरु, अनया रीत्या गुरुः शिष्यं तथा उपदिशति यथा परिवारार्थं समाजार्थं राष्ट्रार्थं च स्वजीवनम् उपयोगि सम्याद्येत्।

गुरुः स्नातकं शिष्यं ज्ञानदीक्षया दीक्षितमि करोति। सः तस्य समप्रां दूषितां प्रवृत्तिं निराकृत्य तं समाजोपयोगिनं भवितुं प्रेरयित । सःशिष्योऽपि गुरूपदेशतः तथा निष्ठावान् भवति यथा सःसामाजिकः सन् समाजस्य उपकार सम्पाद्यति । इयमेव वैदिकी शिक्षा दीक्षा च ।

(७) उपसंहार: पाठ किन्न क्षेत्र कार्यकार प्राप्त किन वर्तमानसमये प्रत्येकं मानवः प्रायः कष्टम् अभावम् अशान्तिं च अनुभवन् वर्तते । प्रत्येकं मानवस्य हृद्यम् उद्वेखितम् आन्दोलितम् गिंहुग्नम् अस्थिरं च भवत् अस्ति । अस्य सर्वस्य किं कारणं इति अन्वेषणे कृते इद्मेव कारणं प्रतीयते यत् अस्माभिः वैदिकमार्गाऽपर-पर्यायाः भारतीयसंस्कृतेः उपेक्षा कृता । अस्माभिः सदाचारस्य सद्विचारस्य च परित्यागः कृतः अस्माक विवेकशक्तिः क्षीयमाणा वर्तते। वयम् मानवतां मानवधर्मं च विस्मृत्य उन्मत्ताः भ्रान्ताश्च

सन्तः विमार्गगाः जाताः स्मः । अस्माभिः यमनियमादीनां उपेक्षा कृता अस्माकम् आहारिवहार्व्यवहाराविकृताः जाताः सांसारिकी स्थितिरिप विकृता जाता सर्वेत्र अतिवृष्ट्यनावृष्टि, शलभ, मूषक, शुक, स्वचक्र, परचक्र, भयाद्या ईतयः प्रसृताः भवन्ति । प्रत्येकं मनुष्यः नीतिं नैतिकतां च विहाय अनैतिकः भवन् अस्ति । उक्तं च-'नृणां-नीति परित्यागाद् विपाकाःस्युर्भयंकराः" अस्याः समप्रायाः दुःस्थितेः तरणाय केवलं भारतीयवैदिकसंस्कृतेः सुरक्षा एव परमोपायः अस्ति । वैदिकधर्मस्य वैदिकपरम्परायाः च अनुसरणेन प्रचारेण च वयं सर्वे संकटेभ्यः सुक्ताः सन्तः सुखं शान्तिं च प्राप्तुं शक्नुयाम । राष्ट्रस्य च कल्याणं अनैव रीत्या भवितुमहति । वेदाः स्वयमेव अस्मिन् विषये स डिण्डिमघोषं कथयन्ति—

॥ १ ॥ वेदोक्तं कर्म-

अन्यसरच न्यचसरच बिर्छ विष्यामिमायया । ताम्यामुद्धस्य वेदमय कर्माणि कृण्महे ॥

॥ २ ॥ प्रयत्वं-

प्रियं मा कृषु देवेषु प्रियं राजसु मा कृषु । प्रियं सर्वंस्य पश्यत उत श्रुद्ध उतार्ये॥ ॥ ३॥ कल्याणं—

भद्रमिच्छम्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षासुपनिषेदुरग्रे। ततो राष्ट्र बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसं नयम्तु॥ १। ४॥ सस्रं-

> को नो बातो बातु को नस्तपतु स्याः । अहानि को भवन्तु नः को रात्री प्रतिधीयतां कीमवा नो ब्युच्छतु ॥ १ ॥

> > 300

सार वेद्र विच

(8

वेद वेदा नेश नहात जान

वेया का खल् भरद्व

कठित धर्मद ॥स० काल

वे।

वेदतत्त्वविचार

यस्य निश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्। निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थं महेस्वरम्॥

वेद ही अखिल ब्रह्माण्ड के आधार हैं। हमारा धर्म, राजनीति सामाजिक व्यवहार एवम् शिक्षा-दीक्षा का आधार भी वेद ही है। वेदतत्त्व को जानने के लिये हमें त्रिकोणात्मक रूप से विभाग कर विचार करना होगा। वेद, वैदिक, वैदिक-धर्म यह त्रिपुटी है।

(१) वेद क्या है -

"अनन्ता वे वेदाः" ॥ तै॰ ब्रा॰ ३।१७।११ ॥ वेद अनन्त हे और वेद का वेदत्व भी विशेष कारण से सिद्ध है। "नेन्द्रियाणि नानुमानं वेदाष्ट्रोवेनं वेदयन्ति तस्मादाहुर्वेदा इति" ॥ पिप्पछादश्रुतिः॥ नेत्र, मन आदि इन्द्रियाँ और अनुमान आदि प्रमाण जिस स्वर्गादि त्रह्मलोक में नहीं पहुंचते उस अलौकिक अदृष्ट उपाय को वेद ही जानता है। इस लिये वेद का वेदत्व है। "मंत्र, ब्राह्मणयोर्वेद नाम-वेयम्" ॥ आपस्तम्ब परिभाषा १।३३॥ "मन्त्र और ब्राह्मण भाग का नाम वेद है। "य एव सन्त्रब्राह्मणस्य दृष्टारः प्रवक्तारश्च ते बिल्वितिहासपुराणस्य धर्मशास्त्रस्य चेति"॥ न्यायसूत्र ४।१।६२॥ जो भरद्वाज, विश्वामित्र आदि ऋषि मंत्र भाग और मंत्र भाग के किन अथरूप ब्राह्मण भाग के द्रष्टा हैं, वे ही इतिहास, पुराण और धमशास्त्र के भी प्रवक्ता हैं। "वेदशास्त्रद्रयं चैव प्रमाणं तत्सनातनम्" मिन्सा १०।३०५॥ मंत्र भाग और ब्राह्मण भाग ये दोनों ही अनादि-काल से प्रमाण माने जाते हैं। वेद प्रमाण मानने वाला ही वैदिक है। "सर्वे शब्दाः सर्वाथवाचकाः। शब्दप्रमाणका वयम् यच्छब्द् आह विस्माकं प्रमाणम्" ॥ महाभाष्य ॥ सब शब्द मात्र सव अर्थ वाले

हैं। शब्द यही ब्रह्म है, वेद हैं—'शब्द ब्रह्म परंब्रह्मममोभे शाश्वतीतन्"। श्री० भा॰ ६।१६।५॥ शब्द ब्रह्म ब्रह्म मूछं वदन्तः। शब्द ब्रह्मवेदः प्रणको वा ब्रह्ममूछं ब्रह्मप्रपको वेदजनको वा॥ काशीर् ३।४४॥

हम वैदिक प्रजा वेद प्रमाण माननेवाले हैं जो कुछ भी वेद ने कहा है वह सब हम लोगों का प्रमाण है, जिन प्रन्थों में प्रत्यक्ष वेद से विरोध हो तो उसमें वेद वचन ही प्रमाण है—

"नित्यानिश्छन्दांसीति यद्यप्यथीं नित्यो यात्वसौ वर्णानुपूर्वी सार्धनत्या तद्मेदाच्चेतन्नवति काठकं, कालापकं, मोदकं, पैष्पलादकमिति ॥

॥ महाभाष्य ॥

इस प्रकार क्षोने पर भी वर्णानुपूर्वी अनित्य है। उस भेद से ही काठक, कालापक, मोदक, पैप्पलादक आदि शाला भेद हो गये हैं। यह छन्दरूप ऋचायें नित्य हैं और मंत्रों का अर्थ भी नित्य है, शालारूप में विकल्पमात्र अनित्य है, जैसा मंत्रद्रष्टा ऋषि को मंत्र भासित हुआ वह उस प्रकार ही पाठ हुआ, वही मंत्र अन्य ऋषि के हृदय में भासित हुआ, वह पाठान्तर है। जैसे काण्वशाला का ईशा-वास्य ४०६ "विजुगुप्सते" और माध्यन्दिनी शाला का इशावास्य ४०–६ "विचिकित्सित" पाठान्तर भेद होने पर भी अर्थ एक ही है। इसिल्ये ही भेद अनित्य है और अर्थ नित्य है।

सर्वास्ता हि चतुप्पादाः सर्वास्चैकार्थवाचकाः। पाठान्तरे पृथग्भूता वेदशाखा यथातथा। प्राजापत्था श्रुतिनित्या तद्विकल्पास्त्विमे रसृताः॥

॥ वायुषु० ६१।५९।७५॥

इन शासाओं में पाठान्तरों के सिवाय दूसरा भेद छूछ भी नहीं है। यह वेद नित्य अपौरुषेय अनादि है, इस विषय में भट्टपाद श्री कुमारिल ने तन्त्रवातिक में वेदों की अपौरुषेयत्व सिद्धि में अनेक युक्ति तकों का उल्लेख करते हुए कहा है— "आदिवाक्यमि श्रुत्वा वेदानां पौरुषेयता। न शक्याऽध्यवसातुं हि मनागि सचेतनैः ॥ तेन वेदस्वतंत्रत्वं रूपादेवावगम्यते। किंचिदेव तु तद्दाक्यं सदृशं छौिककेन यत्॥ तत्रापि छान्दसो मुद्रा दृश्यते सूक्ष्मदृशिभाः"। जिसका स्पष्ट तात्पर्य है कि वेदों को अनेक रूप में सामने रखने से वे स्वयं अपना अपौरुषेयत्व वता देंगे, किसी युक्त्यन्तर की आवश्यकता न होगी—"उक्तं तु शब्दपूर्वत्वम्"॥ पूर्व मीट शश्रित्र ॥ महेश्वर ने ब्रह्मा के दृद्य में वेद प्रेरणा की, वही प्रथम वेदवाणी ब्रह्मा के मुख से प्रकट हुई, वही वाणी नित्य वेदरूप अपौरुष वाक्य अनादि है—"अतएव नित्यत्वम्"॥ उन्मीट शश्रारा ॥

मनुष्यकृत न होने से ही यह वेद नित्य अनादि महेश्वर का ज्ञान है।

ही

यह दो वेद पढ़ने वालों के नाम हैं अर्थात् वेदुआ वा वैदिक कहलाते हैं। इनके छः कम वताये हैं। यथा—"इज्याध्ययनदानानि याजनाध्यापने तथा। प्रतिप्रहश्च तैर्युक्तः षट्कमी विप्र उच्यते"॥ इनमें याजन, अध्यापन, प्रतिप्रह ये तीन जीविका के साधन हैं; इज्या, अध्ययन, दान ये तीन कर्त्तव्य कमें हैं, इस प्रकार जिसका आचरण हो वही वैदिक है।

वेदाध्ययन का तात्पर्य है मन्त्री तथा विशिष्ट शाखा या शाखाओं के ब्राह्मण भाग का अध्ययन। वेद को शाखत एवं अपौरुषेय माना गया है। सभी धर्मशाखकारों ने वेद को अनादि एवं शाखत माना है। संपूर्ण ब्रह्माण्ड वेद से ही प्रसूत है। "ब्राह्मणेन निष्कारणों धर्मः पडझों वेदोऽध्येयो झेय" इति ॥ पातञ्जल महाभाष्य॥ ब्राह्मणों को। विना किसी कारण के धर्म, वेद एवं वेदाङ्गों का अध्ययन करना चाहिए वैदिक को वेदाध्ययन परमावदयक है; क्योंकि यह परमोच धर्म है।

मनु० ४११४७ पूर्व मीमांसा सूत्र जैमिनि ने धर्म को (वेद विहित प्रेरक) छक्षणों के अर्थ में स्वीकार किया है। अर्थात् वेदों में प्रयुक्त अनुशासनों के अनुसार चळना ही धर्म है। धर्म का सबध उन क्रिया संस्कारों से है, जिनसे आनन्द मिळता है। और जो वेदों के द्वारा प्रेरित एवं प्रशंसित है। (चोदनाळक्षणोऽर्थों धर्म:) पू. मी. १११९। धर्म वही है जिससे आनन्द एवं निः श्रेयस सिद्धि हो। (अथातो धर्म व्याख्या स्यामः। यतोऽभ्युदय निः श्रेयस सिद्धिः सधर्मः। (वैशेषिक सूत्र) वेदाध्ययन का तात्पर्य केवळ मन्त्रों को कण्ठस्थ कर छेना ही नहीं, प्रत्युत वास्तविक अर्थ भी समझना और आचरण करना है। (वेदान्त सूत्र ११३१३०। शंकरा चार्य, याज्ञवक्क ३१३०० पर मिताक्षरा) वैदिक ने षडङ्ग पूर्वक शाखाध्ययन करना है। "(श्रिक्षा कल्पो व्याकरणं

वैदिक ने षडझ पूर्वक शाखाध्ययन करना है, "(शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषां गणः। छन्दो विचित्तिरित्येषः षडझो वेद उच्यते, कल्पः कल्प सूत्रम्)" संहिता, त्राह्मण, उपनिषद, भाग यह शाखा कहलाती है, वेद का साङ्गअध्ययन कर वेदोक्त संस्कारों का आचरण करने वाला ही वैदिक है। वैदिक विज्ञान का कर्त्तव्य होता है उसने अपने अर्जित ज्ञान के द्वारा समाज कल्याण, राष्ट्र हित, एवम् विश्व बन्धुत्व की स्थापना के लिए उपयोग करना वही वैदिक है।

एक वैदिक "वेद्" विक्वतियों को कंठस्थीकरण की परंपरा से बाह्य एकामता एवम् बुद्धिचातुर्य की स्थिरता से एवम् पठन् पाठन शक्ति से प्राप्त करता है परन्तु इससे वह 'वेदतत्व' या योगसिद्धि नहीं प्राप्त करता है यथा—

यस्ति त्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति । यदींश्रणोत्यलकं श्रणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥ ऋ० वे० १०।७१।६

जो मानवमात्र वेदरूप मित्र को त्याग देता है उस मानव को छौकिक मनुष्य रिचत प्रन्थमयी वाणी से परछोक के छिये कुछ भी फछ नहीं है, वह जो कुछ पठन पाठन सिहत अवण, मनन, निदि- ध्यासन करता है सो सब ही व्यर्थ परिश्रम करता हुआ सुनता है, तो सत्कर्म का मार्ग नही जान सकता, अर्थात् स्वर्ग मोक्ष को नहीं प्राप्त होता है। अतः जब तक अन्तः करण की वृत्ति का निरोध नहीं होता तब तक सारा परिश्रम व्यर्थ है 'अन्तः करण चतुष्ट्य कहा है, (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) और (चित्तवृत्ति निरोधोयोगः) पातं जलयो मुन् शाण्डिल्य मिक्त सूत्र। चित्तवृत्ति का 'निरोध' ही विद्तत्त्व' एवं योगसिद्धि की प्राप्ति होना है, इसके लिये साधन की आवश्यकता है, साध्य को प्राप्ति होते हो साधन का त्याग है, 'वेद-तत्व' की प्राप्ति का साधन है वैदिक धर्मों का आचरण।

(३) वैदिक धर्म क्या है-

धर्म यह अनेकार्थ है, धर्म की व्याख्या करनी भी कठिन है।
यहां केवल वैदिक धर्म का ही विचार करना है। साधारणे से मनिष्
प्रत्यय होकर धर्म शब्द वनता है ('धारयतीति धमः' धारणात् धर्म
वही है जो धारण किया जाने वाला करने योग्य है। वैदिक धर्म
प्रधान माना गया है, वेद में विणत् आचरणीय धर्म ही 'धर्म'
कहलाता है। वेद निद्धि वेद प्रणीत धर्म को 'वैदिक धर्म' कहा है।
(वेद्प्रणिहितो धर्मः अधर्मस्तद्विपर्ययः) (वेदेन प्रणिहितो
विहितो धर्मः) 'वेद प्रमाग इत्यर्थः अनेनयो वेद प्रमाणकः स धर्मो
यो धर्मः स वेद प्रमाणक इति। तद्विपर्ययो यो वेदनिषद्धः सो धर्मः।

'श्रुतिस्मृतिपुराणानां विरोधोयत्र दृश्यते। तत्र श्रौतं प्रमाणं स्यात-योद्वैधें स्मृतिर्ञा।। ज्यासस्मृतिः १।४॥ वेद, स्मृति पुराणों का जिस किसी वर्णाश्रम धर्म के विषय में परस्पर विरोध हो तो उस विषय में वेद ही प्रमाण है, स्मृति, पुराण का विरोध हो तो मन्वादि स्मृति प्रमाण है। विरोधेत्व न पेक्षं स्याद्सतिह्यनुमानम् ॥ पू० मी० १,३,३॥

इस पर कुतुह्छ वृत्ति-प्रत्यक्षश्रुति विरोधेसित अनषेक्ष श्रुति वाक्य-मेव प्रमाण स्यान्नतुस्मृति वाक्यम् ॥ जिन प्रन्थों में प्रत्यक्ष वेद से विरोध हो तो उसमें वेद वचन ही प्रमाण है, वेद विरुद्ध स्मृति मान्य नहीं है।

"धर्मस्य शब्द मूळ्रवादशब्दमनपेक्ष्यं स्यात्।" ॥ पूर् मीर्व ११३११ ॥ धर्म के विषय में वेद मुख्य प्रमाण होने से मानने योग्य है और वेद विरोधी मनुष्यों के मुन्दर वाक्यों के रिचत परन्तु ब्लमाद, प्रछाप, इत्यादि दोषों से युक्त हो वह त्यागने योग्य है । वैदिक धर्म के विषय में निचकेता ने कहा है-ऋग्वेद १० मं० १३४ सूर् ७ ऋचा।

निक देवा मिनीमसिनिकरायोपयामसि मन्त्राश्रत्यं चरामसि। पक्षेमिरिपिकक्षेमि रत्नामि सं भामहे॥ ऋ० वे० १०।१३४।७॥

हे देवताओं! तुम्हारे विषय में हम कुछ भी लुटि नहीं करते, किसी भी कर्म में विलंब तथा अश्रद्धा नहीं करते, मंत्र भाग और त्राह्मण भाग के अनुसार ही आचरण करते हैं, दोनों हाथों से एकत्रित यहकी सामग्री छेकर स्वर्गीय सोपान मार्ग रूप कर्म का हम सम्पादन करते हैं।

ऐत्रेय आरण्यक में कहा है-

"एष पन्था एतत्कर्मेतत्रह्ममैतत्सत्यम् । तस्मान्न प्रमाद्येतन्नातीयात् । न हयन्त्या यन्पूर्वे ये त्यायस्ते परा वभूवुः ॥ ऐ॰ आ॰ २।१।१॥

यह वैदिक अनादि मार्ग ही इह-परछोक हितकारी है। वहीं कम-उपासना है, वहीं सत्यक्षानमार्ग। ।। ऋग्वेद, यजुर्जेद, सामवेद, अथर्गेद में कम शः ज्ञान, कमें, उपासना, विज्ञान अर्थात्" अनुभव, ब्रह्म प्राप्ति का विषय ही गृह रूप से वर्णित है।। इसिछये ही परंपरागत वैदिक मार्ग में शुष्क तक प्रमाद इत्यादि न करें और उसका त्याग भी न करें, कारण मुख्यतः चार गोत्र प्रवर्तक भूग, अंगरा, विश्वष्ठ, कश्यप तथा उनकी सन्तान कवि बृहरपति, द्धीचि, वामदेव आदि ने भी नहीं त्यागा तो हम उन्हीं महिएयों की ही तो सन्तान हैं, अतः हमें भी नहीं त्यागना चाहिये। इसी वैदिक मार्ग से चलने में हमारा कल्याण है। जिन्होंने वैदिक मर्यादा का उल्लंघन किया, त्याग किया

बह सब अनार्य होकर हीन योनियों में उत्पन्न हो महान् कृष्ट का अनुभव कर पराभव को प्राप्त हुए। संक्षेप में वैदिक धर्म का सारांश क्या है - सवदा वैदिक धर्म की सेवा करनी अर्थात् आचरण करना, प्राणियों की हिंसा न करनी, साधु पुरुषों की सेवा करनी, काम, क्रोध, लोभादि शबुओं को जीतना, दूसरों के गुण-दोष वर्णन का त्याग करना, सत्य वोलना, अग्नि, सूर्य इत्यादि की उपासना करनी, ज्ञिव, वासुदेवादि देवताओं का भजन, पूजन, स्मरण करना। देह, अस्थि, मांस, रुधिर में अहंकार का त्याग करना, खी-पुत्रादि में ममता का त्याग करना, संसार को क्षणभंगुर देखना, वैराग्यभाव से योग में चित्त लगाकर योगनिष्ठ कर्तव्यनिष्ठ, होना चाहिये, इत्यादि धर्मों में चित्त लगाकर शीलवान्, सदाचरणवान् होना चाहिये।

मानव यदि अपना उत्थान चाहता है तो इसी वैदिक मार्ग का अवलम्बन लेकर चलना चाहिये। "यह किंच मनुरवदत्तद् भेषजम्" ॥ तै शा राश्यार ॥ जो कुछ भी मनु ने अजा के छिये बैदिक धर्म कहा है वह सब ही मुख-शान्ति-कल्याणकारी है।

(४) वैदिक राजनीति-

वैदिक राजनीति का स्वरूप कैसा है, देखिये-अथव्वेद जशाहर समा च मा समितिश्चावतां प्रजापते हु हितरौ संविदाने। येनासङ्गच्छा व्यमास शिक्षाचारु वदानि पितरः सङ्गतेषु। विद्या ते सभेनाम निरष्टा नाम वा असि ॥ ये ते के च सभासदस्ते में सन्तु सवाचसः ॥२॥ एषा-महं समासीनानांवर्ची विज्ञानमाद्दे । अस्याः सर्वस्याः संसदो मा-मिन्द्र भगिनं कुणु ॥ ३॥ यद्वो मनः परागतं यद्बद्धमिह वेह वा॥ तद्व आवर्तयामसि मयि वो रमतां मनः ॥ ४॥

'सभा विदुषां समाजः'

इस सूक्त में सभा कैसी होनी चाहिये इसका वर्णन है। सभा दो प्रकार की होती है, प्रामसमिति और राष्ट्रसभा। उसी प्रकार श्रोत सभा, नगर सभा होती है। यह सभायें प्राम, नगर, प्रांत, राष्ट्र का कार्य करती हैं। शासक को (राजा ने) उनका पुत्रवत् पालन करना चाहिये। दोनों समायें एकमत होकर राष्ट्र का कार्य करें। समासद सत्यवादी होना चाहिये, योग्य सम्मित देने वाले हों, राजा को भी उनके ऊपर विश्वास करना चाहिये, समा का नाम निरष्टा है "निरष्टा नाम वै असि"। निरष्टा का दो अर्थ है -एक "नरें: इष्टा" नर अर्थात् नेता मनुष्यों का इष्ट है, प्रिय है। समा को मनुष्य चाहते हैं क्योंकि इस समा द्वारा ही जनता के इष्ट राजा को विदित हो जाते हैं। "न-रिष्टा" अर्थात् जो किसी का नाश नहीं करती और जिसका नाश कोई नहीं कर सकता, समा के कारण प्रजा का नाश नहीं होता है और जनमत के अनुसार चलने वाले राजा की भी सुरक्षा हो जाती है। इस प्रकार "राष्ट्रसभा" सूक्त में वैदिक राज्य शासन का सिद्धांत वर्णित है, यह आज्ञा वैदिक धर्म की है और वैदिक धर्म के अनुसार आचरण होने से ही राष्ट्र का कल्याण है।

"चत्वारो वेद धर्मज्ञाः एर्षत् जैविद्यमेव वा । सा ब्रुते यं स धर्मः स्यादेको वाध्यात्मवित्तमः ॥ या० स्मृ० ११९। इति । "यद् आर्याः प्रशंसन्ति स धर्मः" आपध० १।२०।७ इति ॥

(५) सामाजिक समभाव व्यवहार वा एकता-

समाज में किस प्रकार व्यवहार करने से समाज में अक्षुण्ण एकता और देश की अखण्डता बनी रह सकती है, इसके लिये देखिये अथर्जवेद:—६। ७६४।

सं जानीध्वं सं पृच्यध्व सं वो मनांसि जानताम् । देवा मागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ १ ॥ समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं व्रतं सह चित्तमेषाम् । समानेन वो हविषा जु होमि समाने चेतो अभिसंविशध्वम् ॥ २ ॥

समानी व आकृतिः समाना हृद्यानि वः। समानमस्तु वो मन्तो यथा वः सुसहासति॥३॥ समान स्थान प्राप्त करो, समानता से एक दूसरे से सम्बन्ध जोड़ो, मन भी समानता से युक्त हो, विचार समान हो, समा सबके छिए समान हो, समान बत हो, समान चित्त हो, एक मत हो, सब कार्य में भाग छो, सङ्करप एक हो, हृदय एक हो ॥ १-३ ॥ समानी प्रपा सह वोन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनिंस ॥ अ० ३।६।३०।६।

तुम्हारे अन्न जल का भी भाग एक हो, एक ही सम्बन्ध में जुटकर एक ही साथ ईश्वर की उपासना हो, जिस प्रकार चक्र के आरे नाभि में जुड़े होते हैं, उसी प्रकार समाज में एक दूसरे के साथ मिल-जुल कर रहो, एक दूसरे की मदद करो। "यदन्तर तद्वाद्यं यद्वाद्यं तदन्तरम्।" जो भाव भीतर हो वही बाहर हो, जो भाव वाहर हो वही भीतर हो, यही एकता एवं समभाव है। अ० २।५।४।४

(६) शिक्षा-दीक्षा-

कृष्ण यजुर्वोद् तैत्तिरीय शाखा के शिक्षादि पद्भोपनिषद् यथा— ॥१॥ शिक्षावल्ली ॥२॥ ब्रह्मानन्द वल्ली ॥३॥ भृगुवल्ली॥४॥ गरायणोपनिषत् ॥५॥ चित्ती।

यहां शिक्षावल्ली का कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है। आचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद्। धर्मं चर। स्वाध्यायान् मा प्रमदः सत्यान्न
प्रमदित्वयम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशछान्न प्रमदितव्यम् भूत्ये न
प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।
अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो
धतराणि। यान्यसमाक् सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।
अद्ध्या देयं। अश्रद्धया देयं। श्रिया देयं। द्विया देयं। भिया देयं। संविदा
देयं। एव आदेशः। एव उपदेशः। एवा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनं।
पवसुपासितव्यम्। एवसु चैतदुपास्यं। इति शिक्षोपनिषत्।

गुरु अपने शिष्य को सर्वश्रेष्ठ कर्माचरण के लिये योग्य बनने के गुरु अपने शिष्य को सर्वश्रेष्ठ कर्माचरण के लिये योग्य बनने के लिये शिक्षा देकर शिक्षित करता है—सदा सर्वदा सत्य वोलो, धर्माचरण करो, अध्ययन करने में असावधान न रहो, भूल न करो, सत्य और धर्म में असावधानी न करो, वेद शास्त्र प्रवचन में असावधान न रहो, देव-पितृ कार्य पालन में असावधानी न करो, माता, पिता, गुरु की सेवा करो, जनकी आज्ञा का पालन करो, अतिथि, अभ्यागत, वड़े लोगों का आदर-सत्कार करो, जो कार्य करने योग्य हो उन्हीं का आचरण करो, सेवन करो, जो अकार्य कार्य हैं, उनका आचरण न करो, उनका सेवन न करो। न्यायोपार्जित स्ववृत्ति से कमाये गये धन से कुछ राष्ट्र की सुरक्षा हेतु, समाज के लिये, जनता के लिये दान करो, कारण "दानं वितरणं प्रोक्तं सुनिभिस्तन्वद्शिमिः" वितरण करना—बांटना ही दान है। यही आदेशे है। यही उपदेश है। यही अनुशासन अर्थात् आज्ञा है, यही एक गुरु की अपने शिष्टय के लिये महान शिक्षा एवं दीक्षा है।

गुरुकुछ से स्नातक होने के उपरान्त गुरु के द्वारा ज्ञानदीक्षा प्राप्त कर समाज सेवा करने के छिये गुरु आदेश देता है। इस प्रकार दीक्षित होकर "दीयते विमछं ज्ञानं क्षीयते कर्मवासना" समस्त वासना का क्षय होकर ज्ञान की प्राप्ति होना यही दीक्षा है, और वह एक सामाजिक वनता है "समाजं रक्षन्ति सामाजिकाः" समाज कल्याण की जो भावना रखता है वही सामाजिक है। यही वैदिक शिक्षा-दीक्षा है।

(७) उपसंहार-

आज प्रत्येक मानव कष्ट, अभाव, अशान्ति का अनुभव कर रहा है। प्रत्येक मानव का हृदय उद्देखित, आंदोखित, उद्विम, अस्थिर हो रहा है। आस्थिर इसका कारण क्या है? हमने भारतीय संस्कृति सो दी है। हमारा सदाचार सद्विचार नष्ट हो गया है, विवेकशक्ति समाप्त हो गई है। मानव मानवता एवम धर्म को भूछ गये हैं, उन्मत्त, भ्रान्त होकर विमार्गग हो रहे हैं। यम-नियमादि, आहार, विहार, व्यवहार, विकृत हो सारे संसार की स्थिति विकृत हो गयी है, ईति भय चारों तरफ व्याप्त हो रहे हैं—"अतिवृष्टि, अनावृष्टि, श्रालम, मूषक, शुक, स्वचक्र, परचक्र" क्रमशः यह सात

हितयां कही हैं "शाम्यन्तु घोराणि शाम्यन्त्वीतयः" समाप्त हो गया है।
मनुष्यमात्र ने नीति का त्याग कर दिया है, नैतिकता सो अनैतिक
नता जा रहा है, जिसका स्पष्ट परिणाम है "नृणां नीतिपरित्यागात्
विपाकः स्युभयंकराः" नीति का त्याग करने से मनुष्यों को भयंकर
फल प्राप्त होते हैं। इस आपद्-विपद् काल से एवम् संकटकालीन
स्थिति से सम्हलने का कुल उठकर खड़े होने का साहस, केवल मात्र
भारतीय वैदिक संस्कृति की सुरक्षा से ही हो सकता है। आज वैदिक
धमं लुप्तप्राय हो रहे हैं, अतः इनके प्रचार, प्रसार एवं आचरण से
ही हम संकटमुक्त हो सुल-शान्ति प्राप्त कर सकते हैं और राष्ट्र का
कल्याण हो सकता है। वेद राष्ट्र में सुल, शान्ति, कल्याण के विषय
म कहते हैं देखिये—

अथर्ञावेद-१९।७१८, १९।७१२, १९।५।४१, ७।६।०२ क्रमशः वेदोक्त कर्म, प्रियत्व, कल्याण, सुख—

वेद का आदेश उपदेश न्यष्टि के लिये नहीं समष्टि के लिए होता है।

॥१॥ अञ्यसश्च ज्यचसश्च विछ विष्यामि मायया।

ताभ्यामुद्धृत्य वेद्मथ कर्माणि कृण्महे ॥

हमारा हृदय अज्ञानता से युक्त होने से कर्तव्याकर्तव्य का विचार नहीं रहता अतः हम जीव ईश्वर के द्वारा वेदों का ज्ञान प्राप्त कर ज्ञानयुक्त वेदोक्त कर्म करें।

॥२॥ प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु॥

त्रियं सर्वास्य पश्येत उत शुद्र उतार्ये ॥

सुझे देवताओं में राजाओं में प्रिय बनाओ, और उसी प्रकार हैं देवताओं में राजाओं में प्रिय बनाओ, और उसी प्रकार हैं देखनेवालों को प्रिय रहूँ। ह्यूद्र और आर्यों में प्रिय रहूँ। ॥३॥ मद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरमे।

ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तद्स्मै देवा उपसंनमन्तु ॥१॥

ऋषियों ने जिस तप-व्रतादि से कल्याण की इच्छा कर स्वर्गीदि प्राप्त किया, उसी से राष्ट्रबल, ओज प्राप्त हुआ, वही राष्य, सामध्ये तेज देवता हमें प्रदान करें।

॥ ४ ॥ शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः ।

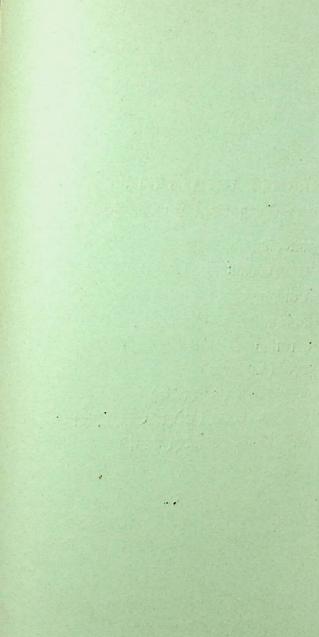
अहानिशं भवन्तु नः शं रात्री प्रतिधीयतां श्रमुषा नो व्युच्छतु ॥१॥ दिन रात्रि, वायु, सूर्य, ख्षा, हमारे छिये सुखमय हों, सुख देने वाले हों, हमारा जीवन सुख, शान्ति, कल्याणमय हो, हमारा राष्ट्र समृद्धि को प्राप्त हो।

I GO T STATE OF THE SECOND

the said to the state of the second of the s

nanty and the first water on the

यही वेदतत्त्व है, एवम् वैदिक धर्म है।



श्रीसीतारामचन्द्र रटाटे स्मृति ग्रन्थमाला के अन्तर्गत कुछ पुस्तकें यथासम्भव शीघ ही प्रकाश्चित होंगी—

१--अथाज्यतंत्रम्

२--नवप्रह्शान्तियागः

३--शिक्षादिचतुष्टयम्

४--गणसंहिता

५--महाशान्तिः

६-मधुपर्क (भाष्यसहित)

७—प्रत्यङ्गिराकल्प (शौनकशासीय)

८--स्वस्तिपुण्याह्वाचनम् (सवशाखीय समालोचनात्मक)

९-वैदिक सिद्धप्रत्यिङ्गरास्तोत्रम् (प्रेस में)

